विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ

बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujjain.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

भारतीय प्राचीन ग्रंथों में जल परंपरा
ज्ञानदेव वर्मा

पृष्ठ क्र. 3-4

प्राचीन भारतीयों के सुदूर प्रवास
राजेश कुमार परसाई

पृष्ठ क्र. 5-6

भारत नदियाँ और उनके बहाव पथ
यतिन्द्र तिवारी

पृष्ठ क्र. 7

उज्जयिनी की अमृतमयी शिप्रा
मिथिलेश यादव

भारतीय प्राचीन ग्रंथों में जल परंपरा

ज्ञानदेव वर्मा

'सलिलम्सर्व सर्व मा इदम्' हिन्दू धर्म की चार प्राचीनतम पवित्र पुस्तकों में से एक ऋग्वेद (एक सहस्र वर्ष इस्वी पूर्व) की महान् वैज्ञानिक ऋचा द्वारा प्रतिस्थापित है कि पृथ्वी के प्रारम्भ से जल था। कहा जाता है कि जीवन का आरम्भ जल में हुआ। जल जीवन का अमृत फल है। यह सभी प्राणियों हेतु अनिवार्य है। प्राचीन काल में मनुष्य वहीं फला–फूला जहाँ पृथ्वी पर जल की आपूर्ति काफी मात्रा में थी। यह आज भी सत्य है। प्राचीन काल में भारतवासी नगर के मुख्य रास्तों पर पथिकों को जल से तृप्त कर विशेष प्रसन्नता का अनुभव करते थे। धर्म प्राण हिन्दुओं द्वारा कूप का निर्माण बड़ा पुण्य कार्य माना जाता था। बुद्ध के समय वाराणसी में अवस्थित एक ऐसे ही कूप पर यह निर्देश लिखा था कि जो कोई भी मनुष्य इस कूप से जितना जल निकाले उतना ही पास में बने एक नाद या लघु कुंड में भी डाल देवे जिससे जानवरों एवं विकलांगों की भी प्यास बुझे। यहाँ बुद्ध के काल की एक और कथा का जिक्र आवश्यक है– शाक्य और कोलिय जनपदवासियों के बीच एक नदी रोहिणी के पानी को लेकर विवाद पैदा हुआ। प्रश्न यही था कि उस नदी के पानी से कितने खेत सींचे जाये। इस विवाद के चलते दोनों जनपदों के बीच युद्ध की नौबत आ खड़ी हुई। करुणामूर्ति तथागत को जब यह पता चला तो वे स्वयं युद्धस्थल पर पहुँचे। उन्होंने युद्ध के लिये तैयार दोनों पक्षों के राजाओं से पूछा पानी का मूल्य अधिक है या रक्त का? 'रक्त का– उत्तर मिला। तो फिर तुम लोग पानी के लिये रक्त बहाने पर क्यों उतारू हो? तथागत के इस कथन के फलस्वरूप शाक्य और कोलियों के बीच होने वाला युद्ध टल गया। एक अन्य पवित्र ग्रंथ 'विष्णु पुराण' में स्पष्ट लिखा है कि जो कोई भी कूप, बगीचा तथा बागों की मरम्मत, निर्माण कराता है, यह बहुत उचित कार्य होता है।

महर्षि वाल्मीकि ने अपने महान् ग्रन्थ 'रामायण' में अनेक जल प्राणियों का वर्णन किया है। जिनका पूजन भगवान राम ने अपने वनवास के समय स्थान–स्थान पर किया। जल का उपयोग पीने के अतिरिक्त सिंचाई और उद्योग में भी अनादि काल से होता आ रहा है। हमारे पूर्वजों ने अपेयजल के संक्रामक रोगजनक दोषों को भी पहचाना था। अत्यन्त प्राचीनकाल में भी भारतीयों को जल के विभिन्न स्रोतों का पता था। ऋग्वेद में जल को चार भिन्न–भिन्न भागों में बाँटा गया था। इसके अन्तर्गत 1. आकाश से प्राप्त होने वाला, 2. नदियों एवं जलधाराओं में बहने वाला, 3. खनन द्वारा प्राप्त व 4. भूमि से रिसकर निकलने वाला भूजल। जाहिर है कि वे आकाशीय जल, सतही जल, कूपजल एवं स्रोत जल की ओर इंगित करते हैं। वैदिक शब्दकोष 'निघंटु' में कूप को एक ऐसा जलस्रोत बताया गया है जिससे जल को श्रम द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यह संकेत कूप निर्माण हेतु खनन के श्रम की ओर है। भूजल के अन्य स्रोत के रूप में उत्साह तथा उत्स्त्रुत प्रकार के जल स्रोत होते हैं, इसके साथ–साथ एक दर्जन अन्य प्रकार के कूपों का भी उल्लेख किया गया है।

स्पष्ट है कि प्राचीन काल में भारतीयों को भूजल का ज्ञान था। विशेषकर इसका जलोढ़ मैदानों में उपस्थिति का भान था जिस कारणवश ऐसे स्थानों पर आवश्यकतानुसार विपुल मात्रा में कूप निर्माण होते थे। इस तथ्य के प्रमाणस्वरूप अर्जुन द्वारा पृथ्वी को बाणों से भेदकर जल प्राप्त करने वाली घटना है। घटनास्थल कुरुक्षेत्र भी एक जलोढ़ मैदान ही है। हमारे अपौरूषेय ग्रन्थ वेदों में जल के उपयोग सम्बन्धी वैज्ञानिक एवं तकनीकी स्तर पर विस्तृत रूप से चर्चा की गई है तथा चारों वेदों से अथर्ववेद में– शंनो देवीरभिष्ट्य आपो भवन्तु पीयते अर्थात दिव्य जल हमें सुख दे। यह ईष्ट प्राप्ति के लिये तथा पीने के लिये हो। शंनः खनित्रिमाआपः खोदकर निकाला जल अर्थात भौम जल हमें सुख दे शिवा नः सन्तु वार्षिकी। वृष्टि से प्राप्त जल हमारा कल्याण करने वाला हो। ऋग्वेद में जल चक्र हाइड्रोलॉजिकल

साइकिल का संकेत मिलता है। इन्द्रोदीर्घाय चक्षस आ सूर्य रोहयत्दिवि। विगोभिरद्रि मैरयत अर्थात् प्रभु ने सूर्य उत्पन्न किया, जिससे पूरा संसार प्रकाशमान हो। इसी प्रकार सूर्य के ताप से जल वाष्प बनकर ऊपर मेघों में परिवर्तित होकर फिर पृथ्वी पर वर्षा के रूप में आता है। यजुर्वेद में समुद्र से मेघ, मेघ से पृथ्वी और फिर विभिन्न सरिताओं में जल से बहाव और फिर समुद्र में उसके संचयन एवं वाष्प का वर्णन है। सामवेद में भी सूर्य एवं वायु द्वारा जलवाष्प के रूप में मेघ बनाता है जो वर्षा के रूप में मेघ बनाता है और वर्षा के रूप में पृथ्वी पर आता है।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के अतिरिक्त जल के विभिन्न स्रोतों का वर्णन प्राचीन साहित्य जैसे ईसा पूर्व प्रथम शती में विरचित भाष कवि के प्रतिज्ञा योगन्धरायण नामक नाटकों के रचयिता चालुक्य वंश के राजा सोमेश्वर (12वीं शती ई.) ने भी दिव्य तथा अन्तरिक्ष दोनों आकाश से ही प्राप्त होने वाले, प्रथम स्वाती नक्षत्र में और दूसरा अन्य नक्षत्रों में जैसे नादेय किसी पर्वती धारा जो मैदान में पहुँचती हो, पर्वत तल से उद्गमित निर्झर पर्वतीय जलधारा तथा स्रोतों से निकले पानी से एकत्र बने कुण्ड में जहाँ श्वेत अथवा लाल कमल उगे हों, सरस जल कठोर चट्टानों से निकले स्रोतों से चौण्ड जल भूगत से प्राप्त भूजल द्वारा जल के प्रकारों का वर्गीकरण किया है। तत्पश्चात ऐसे जल को जो वर्षा बाद एक कुंड में एकत्र हो जावे तड़ाग तथा नारियल के वृक्ष को 'जल वृक्ष' की संज्ञा दी। यह भलीभाँति ज्ञात है कि जल के अनेक उपयोग हैं। काफी अरसे से जल का उपयोग पीने एवं सिंचाई हेतु होता आ रहा है। यह भी प्रतिस्थापित है कि प्राचीन सभ्यता नदी घाटियों में विकसित हुई जहाँ जल भरपूर मात्रा में उपयोग हेतु उपलब्ध था।

जलस्रोतों विशेषकर नदियों, कूपों एवं स्रोतों के स्थल पर अनेक धार्मिक मेले भी होते आ रहे हैं। ऐसे अनेक स्रोतों, कूपों के जल अपने चिकित्सकीय गुणों हेतु भी विख्यात हैं। इनमें पटना का राजगृह कुंड, कांगड़ा जिला, हिमाचल प्रदेश का मणिकरन कुण्ड, उत्तर प्रदेश के चमोली जिले का गोरीकुण्ड तथा वाराणसी का वृद्धताल है। ईसा पूर्व की सिंधु घाटी सभ्यता के स्थलों की खुदाई में अनेक कूप, कुंड तथा नहरें प्राप्त हुई हैं। चौथी शती ईसा पूर्व के महान् वैयाकरण पाणिनी ने शकन्थु कूपों का वर्णन किया है जो मध्य एशिया के शक लोगों द्वारा उपयोग में लाया जाता था। इन कूपों में जल स्तर तक उतरने हेतु सीढ़ियों की व्यवस्था की। बाद में इन कूपों का चलन बावड़ी रूप में हमारे देश में भी हुआ जिसमें जानवर एवं मनुष्य भी एक ढालुआँ रास्ते से अथवा इच्छानुसार सीढ़ियों द्वारा जलस्तर तक पहुँच सकते थे।

यहाँ उल्लेखनीय होगा कि गुजरात में विशेषकर उत्तरी भाग में एक प्रकार की बावड़ी जिसे वाव कहते थे जो 70 मीटर तक गहरी और जलस्तर तक निर्मित सीढ़ियों से युक्त बनाई जाती थी। ये सीढ़ीदार कूप वातानुकूलित कक्षों का काम देते थे जिनके चारों ओर चौड़ी बारहदरी बनी होती थी। ये वाव 7 शती ईस्वी तक प्राचीन और सौराष्ट्र क्षेत्र में 1935 तक आधुनिक काल में भी बनाए जाते रहे। कौटिल्य (तीसरी शती ईस्वी पूर्व) ने अपने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ में जनता को पीने के पानी हेतु शासक के आवश्यक कार्यों में कूपों, तालाबों तथा नहरों का निर्माण बतलाया है। समाज के श्रेष्ठजनों द्वारा यह एक पवित्र कार्य माना जाता था। ऐसे कार्य हेतु काठियावाड़ में उस युग के एक तालाब पर शिलालेख द्वारा जो निर्देशित है। उससे यह स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय प्रायद्वीप में सीमित वर्षा तथा कठोर चट्टानों के कारण भूजल के दोहन की समस्या होने के कारण जल के भण्डारण हेतु तालाबों का निर्माण बहुत प्रचलित माना जा सकता है।

गर्मी के मौसम में जल की कमी को दूर करने हेतु वर्षाजल को लाभप्रद रूप में एकत्र किया जाता रहा। सिंधु घाटी सभ्यता के काल से ही भारतीयों का मुख्य जीविका साधन कृषि चला आ रहा है। हड़प्पा काल से ही किसान सतही एवं भूजल का उपयोग करते आ रहे हैं। अनेक स्थलों की पुरातात्विक खुदाई इस तथ्य के प्रमाण हैं। मोहनजोदाड़ो से प्राप्त कपड़े के टुकड़े पर बने ढेंकुली का चित्र तथा पत्थर इस सम्बन्ध में प्रमाणस्वरूप हैं। उपरोक्त ढेंकुली का चलन भारत में रहा है तथा यह लाट या पिक्षोटाह कहलाती थी जो अति प्राचीन काल से पानी उठाने की प्रक्रिया का अंग है। मोहनजोदाड़ो से प्राप्त चित्र में एक व्यक्ति को शेडूफ का उपयोग करते दिखाया गया है। लेखक को इस प्रकार के और प्रमाण गुजरात में लोथल नामक स्थान में भी मिले हैं।

भारतीय जीवन और साहित्य में प्रकृति को अनादि काल से महत्व दिया जाता रहा है। वहाँ प्रकृति का निरूपण आलम्बन विभाव के अन्तर्गत कम, उद्दीपनगत विभाव के अन्तर्गत सविस्तार हुआ है। जीवन का आरंभ और अंत जल से होता दिखता है। उदाहरण के लिए कबीर को जीवन की क्षण भंगुरता बतानी होती हैं तो वे कहते हैं पानी केरा बुदबुदा जस मानुस की जात। आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता बतानी होती है तो कहते हैं जल में कुंभ, कुंभ में जल है और अन्त में कहते हैं–फुटा कुंभ जल जलहि समाना। तुलसी को खल के इठलाने पर व्यंग्य करना होता है तो कहते हैं–छुद्र नदी जल भरि उतराई, जल थोरे धन खल इतराई। प्रेम, वियोग, भक्ति और जीवन–व्यवहारों की व्यंजना के लिए जल का, वर्षा का, नदी का अपरिमित रचनाओं में संदर्भ और संकेत आया है। पानी अक्सर स्वभाव की निर्मलता और पारदर्शिता के उपमान के रूप में इस्तेमाल होता है। परंतु वह स्वच्छंदता और विद्रोह का प्रतीक भी है। बाग्ला में एक निर्मल व्यक्ति के लिए जॉलेर मतो (जल के समान) कहा जाता है। निर्गुण मार्गी संतों के काव्य में जलीय प्रकृति के अनेक रूप और सन्दर्भ मिलते हैं। सागर, सरिता, सर, सरोवर, जलीय जीव–जंतु आदि इस दृष्टि से उल्लेख्य हैं। संतों ने समुद्र का वर्णन मुख्यतः उपमान या प्रतीक के रूप में किया है। उन्होंने उसकी गहनता, विस्तार तथा खारेपन के साथ उसकी लहरों तथा उसके अंदर रहने वाले जंतुओं का वर्णन किया है।

प्राचीन भारतीयों के सुदूर प्रवास

राजेन्द्र कुमार परसाई

प्राचीन काल से ही भारतीयों में बाहरी देशों में जाने में उत्सुकता जाग चुकी थी। धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रयोजनों से जलमार्गीय तथा स्थलम्वगीय साहसिक यात्राएँ करके वे बाहरी द्वीपान्तरों में प्रविष्ट होकर वहीं बस गये। उनमें क्षत्रिय सामन्त, ब्राह्मण–पुजारी, बौद्ध भिक्षु–भिक्षुणी और वैश्य व्यापारी प्रमुख थे। पुराण जातक बृहत्कथा और मिलिकद पह में विदेशों में स्थापित भारतीय उपनिवेशों के विषय में बड़ा सुन्दर वर्णन है। कालिदास ने भी रघुवंश में पूर्वी द्वीपान्तरों का उल्लेख किया है। चीनी और जावाई परम्पराओं तथा इतिहास में भी द्वीपान्तरों में ऐसे भारतीय उपनिवेशों का विस्तार से वर्णन किया गया है। भारतीय इतिहास में ऋषि परशुराम अपने ओजस्वी व्यक्तित्व एवं दृढ संकल्प के लिए प्रसिद्ध है। भारत से बाहर आर्य संस्कृति के प्रसार में ऋषि अगस्त्य के बाद उन्हीं का दूसरा उल्लेखनीय नाम है। उन्होंने नर्मदा घाटी और सुदूर अरब सागर के तट पर आर्य बस्तियों को बसाया और वहीं से भारतीय संस्कृति को द्वीपान्तरों में प्रसारित करने का अभियान चलाया। ऋषि परशुराम की परम्परा को सातवाहन शासकों ने उजागर किया। इन पूर्वी द्वीपान्तरों के लिए बंगाल की खाड़ी के धनकटक, मसुलिपत्तन तथा कोनारक बन्दरगाहों से अरब सागर पार के वैजयन्ती (गोवा) और कल्याणी के बन्दरगाहों तक जलमार्ग द्वारा गमनागमन की सुव्यवस्था का आरम्भ दक्षिण के आन्ध्र सातवाहनों के शासनकाल (लगभग दूसरी शती ई.पू.) में हुआ। बृहत्कथा के विभिन्न सन्दर्भों में सातवाहन राजा हाल (प्रथम शती ईसा पूर्व) की साहसिक समुद्री यात्राओं का उल्लेख हुआ है। इन सन्दर्भों में सुवर्ण सिंहल तथा कर्पूर आदि द्वीपान्तरों के नाम इस धारणा की पुष्टि के सुदृढ़ प्रमाण है कि सातवाहनों के शासनकाल में भारत के दक्षिण–पूर्वी द्वीपान्तरों के साथ समुद्री नागों द्वारा सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। भारत में सातवाहन साम्राज्य के अन्तिम समय अर्थात् ईसा की लगभग दूसरी शती के आरम्भ में शक, पहलव, चोल और पाण्ड्य आदि के आक्रमणों तथा सनके पारस्परिक संघर्षों के फलस्वरूप भारत में राजनीतिक तथा आर्थिक उथल–पुथल की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इस कारण भी कई भारतीय बाहनी देशों में फैल गये। मलय कम्बोडिया, सुमात्रा, जादा और बाली आदि द्वीपानारों में ईसा की दूसरी या तीसरी शती में इस वर्ग के लोगों ने उपनिवेशों की स्थापना की। यद्यपि शासन में उनका प्रमुख स्थान नहीं था, किन्तु वे भारतीय संस्कृति की स्थापना तथा उत्तरोत्तर उन्नति में बड़े सक्रिय रहे। द्वीपान्तरों में भारतीय संस्कृति, कला और धर्म की महान् एवं विशाल चपाती को प्रचारित–प्रसारित करने में भारतीय ज्ञान–ग्रन्थों एवं ज्ञान प्रवण सन्तों महात्माओं का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है। जिन भारतीय ग्रन्थों के उच्चादर्श विभित्र कलाओं में रूपायित होकर एशिया के विशाल भू–खण्ड में भारतीय संस्कृति के वाहक बने, उनमें रामायण तथा महाभारत महाकाव्य जातक, पुराण, आगम,

तन्त्र सद्धर्मपुण्डरीक प्रज्ञापारमिता, ललितविस्तार, श्रद्धोत्पाद द्विव्यावदान, अभिधर्मकोश, सूत्रालंकार औ बुद्धचरित का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुषाण साम्राज्य (प्रथम शती ई.) में सद्धर्मपुण्डरीक की रखना हुई और तीसरी शती ई. के अन्त में उसका चीनी भाषा में अनुवाद हुआ। धर्म तथा दर्शन का अद्‌भुत समन्वय के लिए इस ग्रन्थ पर भगवद्‌गीता का व्यापक प्रभाव है। उसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी की आधे एशिया में उसने बौद्ध बाइबिल जैसा दर्जा प्राप्त कर लिया (भारत की संस्कृति और कला पृ. 21)। भारतीय उच्चाद शान्ति सद्‌भाव और एकता की सार्वभौम स्थापना करके जिन बौद्ध ग्रन्थों ने कला–मध् में परिमण्डित होकर विस्तृत भू–खण्ड पर अपना एकाधिकार स्थापित किया, उनमें अश्वघोष का बुद्धचरित और आर्यशूर की 'जातकमाला' का नाम भी उल्लेखनीय है। उनके उच्चादर्श एवं महान् सन्देश पहले तो अजंता में उभरे और फिर एशिया के भू–भाग की कला पर छा गये। इन बौद्ध–ग्रन्थों के अतिरिक्त रामायण तथा महाभारत और अनेक पुराणों द्वारा भी भारतीय संस्कृति तथा कला का एशिया में प्रचार–प्रसार हुआ। इसका मुख्य श्रेय गुप्त सम्राटों को है। शक्ति–सम्पन्न एवं सहिष्णु गुप्त शासकों ने एक ओर तो भारत के विभिन्न क्षेत्रों में

अपने प्रभाव को बढ़ाने में प्रयत्नशील शकों, यवनों, कुषाणों, हूणों और पल्लवों के अस्तित्व को आहत करके बृहद भारत में एकाधिकार सम्पन्न साम्राज्य की स्थापना की तथा राष्ट्र–रक्षा के कार्यों को सुदृढ़ करते हुए परम्पराओं को पुनर्जीवित किया और दूसरी ओर साहित्य, संस्कृति तथा कला के प्रचार–प्रसार के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण किया। उनके समय भारतीय धर्म, दर्शन तथा संस्कृति का सन्देश विद्वानों तथा निक्षुओं द्वारा सुवर्णद्वीप, चम्पा, ताम्रलिप्ति द्वारावती और पनपन आदि प्रायद्वीपों में पहुंचा तथा वहाँ हिंदू उपनिवेशों की स्थापना हुई। इन देशों के अतिरिक्त इंडोनेशिया, तिब्बत, नेपाल, मंगोलिया और चीन आदि देशों में भी गुप्तों के सांस्कृतिक तथा कलात्मक उच्चादर्श प्रसारित हुए। गुप्तों ने जिस भूमिका का निर्माण किया उसको गुणवर्मन (423 ई.) शान्तरक्षित (7वी शती), वज्रबोधि (711 ई.), कुमारघोष (782 ई.) और दीपंकर श्रीन (1011 ई.) जैसे विद्वान भिक्षुओं द्वारा जावा से कम्बोडिया और वर्मा से बाली तक समस्त दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों में ब्राह्मण, बौद्ध तथा शैव धर्मों का प्रवेश हुआ। उनके प्रवेश एवं प्रभाव के स्थायी स्मारक अनेक मठ, मन्दिर तथा उनमें रूपायित कला की भव्यता आज भी उनकी गौरवगाथा को सुरक्षित बनाये हुए हैं। एशिया के विभिन्न देशों के साथ भारत के सम्बन्धों की स्थापना ईसा के कई सौ वर्ष पूर्व हो चुकी थी। उसके प्रमाण एशिया माइनर के बोगाजकुई नामक स्थान में प्राप्त अभिलेख हैं, जिनका समय विद्वानों ने 1400 ई. पूर्व के लगभग निर्धारित किया है। इन अभिलेखों में खत्ती और मितानी जातियों में हुई पारस्परिक सन्धि का उल्लेख हुआ है इस सन्धिपत्र में साक्षी–स्वरूप जिन देवताओं का उल्लेख किया गया है, उनके नाम हैं– मि–इत्–2 (मित्र) उ–रु–व–न (वरुण), इन्–दार (इन्द्र) और न–श–अ (त–ति–इअ–अ) न्न (नासत्य)। दोनों नासत्य देवताओं सहित इन्द्र, मित्र और वरुण ऋग्वेद के मुख्य अधिष्ठाता एवं बहुचर्चित देवता हैं। ईरानियों के धर्म ग्रंथ अवेस्ता में भी इन देवताओं को इसी रूप में मान्यता दी गयी है। उक्त अभिलेखों के समय (1400 ई. पूर्व) के कुछ पत्र तल्ल अल्ल अमरना नामक गाँव से प्राप्त हुए हैं। उसमें कुछ मितानी राजाओं के नाम संस्कृत भाषा में उल्लिखित हैं। उदाहरण के लिए आर्ततम तुषरत और सुतर्तन (सुत्राण) हैं। इसी प्रकार बेबीलोनिया के कस्सी शासकों (1746–1180 ई. पूर्व) के नाम सुरिअस् (सूर्य) और मर्तयस् (मरुतम) भी संस्कृतनिष्ठ हैं। असीरिया के राजा असुर बनीपाल (700 ई. पूर्व के लगभग) के पुस्तकालय से एक सूची प्राप्त हुई है। जिसमें अस्सर–मजस् आदि देवताओं के नाम उल्लिखित हैं। इन नामों की एकता एक ओर तो ईरानियों के धर्मग्रन्थ अवेस्ता में उल्लिखित अहुर–मज्द नामों से और दूसरी और संस्कृत के असुर शब्द में बैठती है। इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि एशिया माइनर के विस्तृत भू–भाग में अति प्राचीनकाल में ही अभीदिक संस्कृति का प्रभाव व्याप्त हो गया था। और यहाँ के साहित्य तथा जन–जीवन के साथ भारत के सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। वर्तमान मलेशिया प्राचीन काल में मलय देश के नाम से प्रचलित था यद्यपि इस मलय देश के अन्तर्गत वर्तमान मलेशिया की अपेक्षा बृहत् भू–भाग सम्मिलित था। दक्षिण भारत से लगभग दो हजार मील की दूरी पर अपस्थित प्राचीन मलय देश के अनेक अंचलों पर भारतीयों का शासन था। उसके मलय नामकरण से ही भारतीयता का आभास होता है। उसका यह नामकरण, सम्भवत इस देश में अधिकता से उगने वाले चन्दन के पृक्षों के ही कारण हुआ।

एशिया महाद्वीप के विभित्र स्थानों से प्राप्त अभिलेखों तथा संस्कृत पालि ग्रंथी और चीनी–मलियाई परम्पराओं में मलय को सुवर्ण भूमि के अन्तर्गत परिगणित किया गया है। वहीं से उपलब्ध प्राचीन अभिलेखों तथा प्रशस्तियों की भाषा संस्कृत है और उनमें प्रयुक्त लिपि की समानता पाँचवीं शती ई. की उत्तर भारतीय गुप्तलिपि से मिलती–जुलती है। ये अभिलेख स्तम्भों तथा शिलाओं पर उत्कीर्णित हुए मिले हैं और उनका लेखन प्रकार तथा दान किये जाने आदि का कण्व विषय सर्वथा भारतीय है। बौद्ध–ग्रन्थ महावंश में सोम तथा उत्तर द्वारा उपनिवेश स्थापित करने का उल्लेख हुआ है। एक लेख में कहा गया है कि बुधगुप्त नामक एक नाचिक कर्ण सुवर्ण (उत्तरी चंगाल) से मलय प्रायद्वीप गया था (महानाविक बुधगुप्तस्य रक्तमृत्तिका वास्तव्यस्थ–एसो. बंगाल भाग 94 75)। उपलब्ध अभिलेख–सामग्री में मलय के प्राचीन हिन्दू शासकों में लक (200 ई.) और उसका पुत्र भगदत्तो या भागवत तथा श्रीपाल वर्मा (500 ई.) का नाम प्राप्त होता है।

मलय से जो अभिलेख प्राप्त हुए हैं। उनसे ज्ञात होता है कि लम्बे समय तक वहाँ संस्कृत का व्यापक प्रचार–प्रसार रहा। संस्कृत–ग्रन्थों में पूर्वी मलय को ताम्र लिंग के नाम से कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मलय प्रायद्वीप में ब्राह्मणधर्म के अतिरिक्त बौद्धधर्म और साहित्य का सुदीर्घ काल तक प्रचलन रहा। वर्तमान मलेशिया के अनेक स्थानों के संस्कृत नामों से वहाँ संस्कृत के व्यापक प्रभाव का पत्ता लगता है। मलेशिया की वर्तमान राजधानी कुआलालम्पुर का पुर शब्द निश्चित ही नगर का बोधक है। इसी प्रकार सरेमवन (श्रीरामवन) सुगी पट्टनी (श्रृंग पट्टन), जेतालिंग जप (स्फटिकलिंग जप) आदि शब्द संस्कृतमूलक है। सिंहापुर (सिंहपुर) नितान्त संस्कृतज शब्द है, जिसका अर्थ है सिहों का नगर (सिंहपुर)। मलय के एक स्थान की खुदाई में परमेश्वर नामक किसी हिन्दू द्वारा बनाये गये एक गढ़ के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यह गढ़ सिंहपुर के दक्षिण में था जो कि बाहरी देशों का समुद्रपथ था। इस स्थान पर प्राप्त शिलापट्टों पर भारतीय निर्माता एवं शासकों का नाम लिखा है। प्रभुत्व और सुरक्षा दोनों दृष्टियों से इस दुर्ग का बड़ा महत्व था। सुँगी पट्टनी में भी एक शिव मन्दिर प्राप्त हुआ है। मलय द्वीप के प्राचीन और आधुनिक नामों में लिंग शब्द के अधिकाधिक प्रयोग का आशय सम्भवतः यह हो सकता है कि वहाँ शैव धर्म की प्रधानता थी। मलय प्रायद्वीप में भारतीय संस्कृति तथा ससंस्कृत भाषा के प्रभुत्व एवं प्रचार–प्रसार के अनेक प्रमाण आज भी वहाँ जीवित हैं।

भारत नदियाँ और उनके बहाव पथ

यतिन्द्र तिवारी

भारतीय जनमानस में नदियों को पवित्र और जीवनदायिनी माना गया है। अतः उन्हें माता–तुल्य और पूजनीय भी कहा जाता है। उनमें स्नान करना एक पवित्र कार्य माना गया है। यही कारण है कि अधिकांश धार्मिक स्थल और आश्रम नदियों के किनारे विकसित हुए। इतिहास और सभ्यता के साथ नदियों के इस जीवंत अन्तसंबंध के साक्षी अनेक अवशेष अब भी विद्यमान हैं। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार सब नदियाँ पवित्र हैं, सब सागर की ओर बहती हैं, सब विश्व के लिए मातास्वरूप है

और सब पापों को हरने वाली हैं। भारत की भौगोलिक स्थिति में नदियों का केन्द्रीय महत्व है। भारत का एक अन्य नाम सप्तसिन्धु भी है जिसका आधार यहाँ बहने वाली सात बड़ी नदियों की महत्ता प्रदर्शित करना था। ये सात नदियाँ गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, सिन्धु, नर्मदा और कावेरी हैं।

नदियों की पवित्रता के प्रमाण प्राचीन काल से वेद, पुराण, महाकाव्यों, जैन और बौद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त प्राचीन काल में भारत आए यूनानी एवं चौनी यात्रियों द्वारा लिखित वृत्तांतों में मिलते हैं। भारत के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में अनेक ऐसे स्रोत मिलते हैं, जिनसे नदियों की पूजनीय स्थिति के स्पष्ट संकेत उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद के नदी सूक्त के अनुसार जब विश्वामित्र एक यज्ञ कार्य सम्पन्न कर भेंट में भारी दान–दक्षिणा के साथ लौट रहे थे तो विपाशा (व्यास) और शुतुद्रि (सतलुज) नदी अपने उफान पर बह रही थी। उन्हें पार करने के लिए कठिनाई महसूस करने पर विश्वामित्र ने उनसे प्रार्थना कर रास्ता माँगा। नदियों के कहने पर उन्होंने इन्द्र और सविता से भी प्रार्थना की और तब वे नदी पार कर सके।

भारत की प्रमुख नदियों को उनके उद्घाम स्रोत पहाड़ों अथवा पर्वतश्रेणियों के आधार पर श्रेणीबद्ध किया जा सकता है भूभाग और प्रशासनिक विभाजन के आधार पर जहाँ से ये बहती हैं। मोटे तौर पर उन्हें दो वर्गों में परिचिह्नित किया जा सकता है। प्रथम, वे जो एक विशेष समूह से जुड़ी है और दूसरी वे जो स्वतंत्र आधार पर बहती हुई या तो विलुप्त हो जाती है अथवा रागर में मिल जाती हैं। भारत के उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिमी भागों में बहने वाली अनेक नदियों का विवरण प्राचीन काल से उपलब्ध है। उत्तरी भारत में भहने वाली नदियों से हैं जिनका उद्गम हिमालय पर्वत या उसकी पर्वत श्रृंखला से होता है। इनमें से प्राचीनतम नदियों के रूप में गंगा, यमुना, सिन्धु, सरस्वती, वितस्ता सुतु सतलुज विपाशा (व्यास), पानी, असिक्नी, मारुतवृद्धा, अर्जिकिया, सुशोमा त्रिष्टमासा, सुशा, स्वेत्या, कुभा, मेहात्लु, हुभु, गोमती इत्यादि का वर्णन हिमालय से निकलने वाली प्रतिनिधि नदियों के रूप में ऋग्वेद में मिलता है। मार्कण्डेय पुराण में हिमालयी नदियों से हिमालय में गंगा, सरस्वती, सिन्धु चन्द्रभागा, अपागा, यमुना, शत्गु, वितस्ता, एरावती, कुडू, श्यामा, धूतप्पा, बाहुदा दूरावती, विपाशा, देविका, मक्तु विशाला, गंधकी और शुका कहा गया है। वराह पुराण में गंगा, सिन्धु, सरस्वती, शतदु वितस्ता, विपाशा, चन्द्रभागा, सरयू, यमुना, इरावती, देविका कुरु, अखमी, धूतपापा, बहुदा दृष्टावती, कुशी, निशिरा, गण्डकी, चानुमति और लोहिता (ब्रह्मपुत्र) आदि का उल्लेख है। उत्तरी भारत की नदियों को दो प्रमुख नदी व्यवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। गंगा व्यवस्था और सिन्धु व्यवस्था। इनमें से सिन्धु व्यवस्था को उत्तर पथ अर्थात भारत के उत्तर और उत्तर पश्चिमी भागों से सम्बद्ध माना जाता है जबकि गंगा व्यवस्था को मध्य देश अर्थात् भारत के मध्यवर्ती भागों से पूर्व और पश्चिम की और जाते हुए खोजा जा सकता है। ब्रह्मपुत्र और मेघना के साथ सम्बन्ध को देखा जाए तो गंगा व्यवस्था असम तक जाती है। पालि साहित्य में तो हिमालय से निकलने वाली 500 नदियाँ बताई गई हैं जिनमें से गंगा, यमुना, चंद्रभागा, सरयू अचिरावती, माही, सिन्धु, सरस्वती, वेत्तावती, और वितम्शा (वितस्ता) को प्रमुख दस नदियाँ माना गया है। मार्कण्डेय पुराण में भी इस बात का उल्लेख है कि यदि छोटी बड़ी सब नदियों की गणना की जाए, चाहे वे पूरे वर्ष बहने वाली हों अधवा केवल वर्षा काल में, तो उनकी गिनती हजारों में होगी। इसी प्रकार उत्तरी भारत की दूसरी प्रमुख नदी व्यवस्था सिन्धु नदी व्यवस्था है जिसमें सिन्धु नदी का कुल क्षेत्र 268800

कि.मी. है और 16800 कि.मी. का द्रोणि क्षेत्र उसकी सहायक नदियों का हैं। सिन्धु नदी का उद्‌गम तिब्बत के सिंगीकटाल स्थान से माना गया है। वहाँ पर इसे सेन्गे खंबब अर्थात् सिंहमुखी नाम से जाना जाता है। सिन्धु नदी को जल की आपूर्ति अनेक ग्लेशियरों से होती है जिनमें से प्रमुख पाँच सिया चीन, हिस्पर, ब्याफो, बाल्तोरो और बतुरा हैं जो 60 से 70 कि.मी. की लंबाई पर स्थित हैं। सिन्धु नदी, जिसके अन्य नाम सम्भेद और संगम भी हैं, की गणना दिव्य गंगा की सात धाराओं में की जाती हैं। अन्य धाराएँ नलिनी, पावनी, सरस्वती, जम्बु, सीता और गंगा हैं। यूनानी इतिहासकार एरियन ने सिन्धु नदी की महत्ता को गंगा के समान बताते हुए उसकी सहायक नदियों का वर्णन किया है। इनमें प्रमुख हाइड्रोटीस (पुराणों में वर्णित इरावती अथवा एरावती और आधुनिक रावी), एकेसिनीस (वेदकालीन असिक्नी पुराणों की चन्द्रभागा और आधुनिक चेनाव), हाइपासिस (वेद पुराणों में वर्णित विपाशा), हाइडसपीस (वेद पुराणों में वर्णित वितस्ता और आधुनिक झेलम), को फेन (वैदिक कुम्भा और आधुनिक काबुल), परेनोस (भुरिन्दु), सपरनोस (अब्बासिन) और सोनोस (आधुनिक सोन)। इनमें से अधिकांश नदियाँ मेगेस्थनीज के समय भी थीं और नौवहन के योग्य थीं। उत्तरपथ की दो प्रमुख नदियाँ सरस्वती और द्रस्दावती सिन्धु व्यवस्था से स्वतंत्र रूप में बहती थीं। इन दोनों नदियों के बीच के भाग को मनु ने ब्रह्मावर्त के नाम से वर्णित किया है।

प्राप्त विवरणों के अनुसार सरस्वती नदी प्राचीनतम नदियों में से एक है परन्तु इसकी विशिष्टता यह है कि यह अनेक स्थानों पर लुप्त हुई है और अनेक अन्य स्थानों पर पुनर्लक्षित होती है। अनेक स्थानों पर स्थानीय नदियाँ सरस्वती नदी में मिलती हैं जिनमें मारकण्डा और घग्गर प्रमुख हैं। अंततः यह भी अन्य बड़ी नदियों की तरह सागर में मिल जाती है। इसके पूर्ववर्ती रूप और मार्ग पर फिलहाल अनेक शोध चल रहे हैं जिनसे रोचक जानकारियाँ मिली हैं और भविष्य मैं इसके सम्पूर्ण विवरण मिलने की पूरी सम्भावना है। द्रस्दावती नदी का उद्‌गम वर्तमान हिमाचल प्रदेश में सिरमौर की पहाड़ियों से होता है। नाहन तक इस नदी का बहाव पश्चिमोन्मुखी है और उसके बाद इसका बहाव दक्षिण की ओर हो जाता है। अम्बाला जिले से होती हुई सिरसा में यह सरस्वती नदी में मिलकर विलुप्त हो जाती है। आधुनिक पेहुआ शहर (प्राचीन पृथुदका) द्रस्दावती नदी के किनारे पर स्थित था। प्राचीन विवरणों में मनु के अनुसार द्रस्दावती ब्रह्मवर्त की पूर्वी और दक्षिणी सीमा थी जबकि सरस्वती उसकी पश्चिमी सीमा थी। इसी प्रकार महाभारत के अनुसार द्रस्दावती और कौशिकी का संगम विशेष तौर पर पवित्र माना जाता था। वामन पुराण में इससे भिन्न, कौशिकी को द्रस्दावती की एक शाखा माना गया है। गंगा और सिन्धु भारत की दो बड़ी नदियाँ मानी गई है। ग्रीक इतिहासकारों एरियन और पलिनी ने इन नदियों का उल्लेख अपने वृत्तांतों में करते हुए इनके स्त्रोत और सहायक नदियों का वर्णन किया है। गंगा का उद्‌गम उत्तरी भारत में हिमालय की पहाड़ियों से मानद्य गया है जो पूर्व की ओर बहती हुई अन्ततः समुद्र (बंगाल की खाड़ी) में मिल जाती है। गंगा और सिन्धु में गंगा को विशाल और प्राचीन माना गया है जिसकी सहायक नदियों की संख्या भी उन्नीस से अधिक है। ये सहायक नदियाँ भी नौवहन के योग्य थीं। पूर्व की ओर बहती हुई गंगा मार्ग में 14000 अन्य धाराओं को स्वयं में समाहित करती हुई समुद्र में गिरती है। अपने दक्षिण में गंगा अनेक चट्टानों व झीलों के बीच से गुजरती है। पालि ग्रन्थों में दिए गए विवरण के अनुसार गंगा दक्षिण में अनोतता झील के तीन चक्कर अवतगंगा के नाम से काटती है, फिर कान्हागंगा के नाम से 60 लोग की दूरी तक सीधे बहती हुई एक ऊर्ध्वाकार चट्टान से टकरा कर ऊपर की ओर फेंक दी जाती है। यहाँ इसे आकाशगंगा के नाम से जाना जाता है। आकाशगंगा के रूप में हवा में 60 लीग उछलती हुई गंगा तियग्गला चट्टान के ऊपर गिरती है और उसे 50 लोग की गहराई तक खोदती एक झील का निर्माण करती है, फिर बहालगंगा के नाम से 60 लीग तक चट्टान के गिर्द बहती है, इसके पश्चात उम्मग्गागंगा के नाम से गंगा एक सुरंग के अन्दर से बहती है और अन्त में विया नामक चट्टान के ऊपर गिरकर पाँच धाराओं में विभाजित होती है जिनमें से पाँच नदियों का निर्माण होता हैः गंगा, यमुना, अचिरावती, सरभु, और माही। गंगा को सहायक नदियों में प्रमुख और विशाल नदी यमुना है। गंगा और सिन्धु की तरह यमुना का नाम वैदिक काल से चला आ रहा है।

यमुना और गंगा के बीच स्थित बंदरपंच नाम की पहाड़ की चोटी की ढलान से यमुना का उद्‌घाम होता है। इस स्थान को यमुनोत्री के नाम से भी जाना जाता है। उत्तर भारत के मैदानों में आने से पूर्व यह नदी शिवालिक और गढ़वाल की पहाड़िघ्यों से होकर गुजरती है तथा मैदानों में आने के बाद यह दक्षिण की ओर गंगा के समानान्तर बहने लगती है। मथुरा से इसकी दिशा दक्षिण–पूर्व की ओर हो जाती है, इस दिशा में यह इलाहाबाद तक बहती हुई गंगा में मिल जाती है। यमुना के इस मार्ग में अनेक स्थानों पर इसमें अनेक सहायक नदियाँ मिलती हैं जैसे टॉस, चम्बल, काली–सिन्ध (सन्ख्या), बेतवा, केन, व्याशनी इत्यादि। इस नदी के किनारे बहुत से धार्मिक स्थल स्थित हैं जैसे मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, प्रयाग आदि। साथ ही, दिल्ली, आगरा, कानपुर, इलाहाबाद जैसे प्रमुख शहर भी यमुना के किनारों पर विकसित हुए हैं। असम की दो प्रमुख नदियाँ ब्रह्मपुत्र और सुरमा है। वहाँ की शेष नदियाँ इन्हों दोनों में से किसी एक की सहायक नदियाँ हैं। ब्रह्मपुत्र, जो लोहिता और रोहिता के नाम से भी जानी जाती है, का उद्‌गम हिमालय के पूर्वी क्षेत्र में मनसा सरोवर से माना जाता है। यहाँ से नमचा बरवा तक यह पूर्व की ओर बहती है जबकि नमचा बरवा से यह दक्षिण की ओर मुड़कर नीचे की ओर बहती हुई हिमालय को श्रृंखलाओं से असम की घाटी में प्रवेश करती है। यह दक्षिण की ओर बहकर गंगा में मिल जाती है।

पुस्तक चर्चा/मिथिलेश यादव

उज्जयिनी की अमृतमयी शिप्रा

जल उन पाँच मूल तत्वों में से एक है जिनके माध्यम से जीव का जन्म होता है। वैज्ञानिक शोधों से यह सिद्ध हो चुका है कि जीवन जल से प्रारम्भ हुआ है और पृथ्वी पर रहने से पहले प्रारम्भिक जीवधारी दीर्घ अवधि तक जल में ही रहा। विश्व की प्रायः सभी संस्कृतियों और सभ्यताओं का जन्म प्रमुख नदियों के किनारे ही हुआ है। पृथ्वी पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों में जल व्यक्ति के लिए सर्वाधिक मूल्यवान है। जल का कोई विकल्प नहीं हो सकता। विगत दिनों पर्यावरण दिवस के अवसर पर मध्य प्रदेश की यशस्वी मुख्यमंत्री माननीय डॉ. मोहन यादव द्वारा पारंपरिक जल स्रोत व नदियों के संवर्धन के लिए मध्यप्रदेश में जल गंगा संवर्धन अभियान का शुभारंभ किया गया। इस मौके पर संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के वीर भारत न्यास द्वारा उज्जैन की पवित्र शिप्रा व उसकी जल परंपरा से संबंधित तीन पुस्तकों "शिप्रा अमृता का आव्हान", "शिप्रा अमृतसंभवा" व "सदानीरा जल का उत्सव" का लोकार्पण किया। यह पुस्तकें न केवल भारतीय सांस्कृतिक धरोहर को उजागर करती है, बल्कि भारतीय सभ्यता, धार्मिक आस्था और संस्कृति के महत्वपूर्ण पहलुओं के साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उज्जैन की जल संरचनाओं का विश्लेषण भी करती है।

जल और पर्यावरण केंद्रित इन तीन पुस्तकों में से एक पुस्तक "शिप्रा अमरता का आव्हान" में उज्जैन जिले के समस्त सतही जल संरचनाओं संबंधी आंकड़ों के आधार पर विशेष डाटाबेस तैयार कर मानचित्रण का कार्य किया गया है। प्रशासनिक दृष्टि से उज्जैन जिले को कुल छह ब्लाक्स में बाँटा गया है, बड़नगर, उज्जैन, घटिया, महिदपुर, तराना एवं खाचरोद। प्रस्तुत अध्ययन में उज्जैन जिले के आंकड़ों को ब्लाकवार प्रस्तुत किये जाने का प्रयास किया गया है। अध्ययन में उपग्रह छायाचित्रों के आधार पर उज्जैन जिले में स्वच्छ एवं सुरक्षित जल क्षेत्र चिन्हित किये गए है। प्रस्तुत अध्ययन के प्रथम चरण में 1:50,000 मापक पर जिले के 2.5 हेक्टर तक क्षेत्रफल वाले सभी जलाशयों की सूची, कोडिफिकेशन, प्री–मानसून एवं पोस्ट–मानसून जल संरचनाओं में होने वाले जल विस्तार का अध्ययन, उनमें मौजूद गंदगी एवं जलीय वनस्पतियों का मात्रात्मक अध्ययन किया गया। अध्ययन उपरांत आंकड़ों को टेबल्स एवं मानचित्रों के स्वरूप में संकलित कर प्रस्तुत एटलस के रूप में सामने लाया गया है। कार्य के दौरान जल संरचनाओं की जियो टैगिंग का महत्वपूर्ण कार्य भी किया गया, अर्थात् प्रत्येक जल संरचना के अक्षांश एवं देशांतर को भी इस डाटाबेस में समाहित कर उनकी भौगोलिक स्थिति सुनिश्चित की गई।

इसमें उज्जैन जिले के उपग्रह छायाचित्रों में छोटी–बड़ी सब मिलकर कुल 3200 जल संरचनाओं को रेखांकित किया गया, जिनमें से 661 जल संरचनाएँ क्षेत्रफल की दृष्टि से सूक्ष्म (0.1 हेक्टेयर से भी छोटी) चिन्हित की गई हैं। जब पिछले कुछ वर्षों के उपग्रह छायाचित्रों से इसका तुलनात्मक अध्ययन किया गया तो इनकी संख्या में लगातार रूप से वृद्धि परिलक्षित होती है। वर्ष 2006–07 की तुलना में वर्ष 2016–17 में 503 संरचनाओं की संख्या अधिक पायी गई। जबकि वर्ष 2016–17 की तुलना में वर्ष 2018–19 के आंकड़ों से किये जाने पर संरचनाओं की

संख्या में 1025 की बृद्धि पायी गई। उज्जैन जिले के उपग्रह छायाचित्रों में कुल 2473 जल संरचनाएँ ऐसी दिखाई पड़ी जो ग्रीष्म ऋतु में जल विहीन हो जाती हैं। इनके सूखने के मुख्य कारणों में अति दोहन के कारण क्षेत्रीय स्तर पर भूजल का नीचे चले जाना महसूस किया गया। प्रस्तुत कार्य के द्वारा प्राचीन जल संरचनाओं के उचित रखरखाव, गहरीकरण की आवश्यकता और जलीय वनस्पति इत्यादि से संबंधित कार्यों को सुगमिता पूर्वक किया जा सके।

उज्जैन जिले के उपग्रह छायाचित्रों के आधार पर किये गए इस अध्ययन में जलीय संरचनाओं को नदीय संरचना, तालाब तथा जलाशय (बाँध) के रूप में वर्गीकृत किया गया है। जलाशय, पानी के भंडारण के लिए बनायी गयी वे संरचनाएँ है जो आमतौर पर नदी पर जल बहाव को रोककर या बाँध बनाकर निर्मित की जाती है। जलाशय में वेटलैंड सीमा में पानी, जलीय वनस्पति और पानी के पदचिह्न भी शामिल होते है। उपग्रह चित्रों में गहरे जलाशयों, जबकि उथले जलाशयों या उच्च गाद भार वाले जलाशयों के मामले में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। जिले मे 29 संरचनाओं को बड़े जलाशयों (बाँध) के रूप मे चिन्हित किया गया है जो मानव निर्मित है और इनका क्षेत्रफल 40 हेक्टर से अधिक है। ये सभी बड़े जलाशय (बाँध) शासन के जल संसाधन विभाग के आधिपत्य में है और मुख्य रूप से सिंचाई के कार्यों में उपयोग हो रहे है। भारत वर्ष ने हमेशा ही अपने दृढ़ सकल्प, विलक्षण विचारों, आर्ष अंतःकरण, आध्यात्मिक विद्या तथा विज्ञान की समृद्ध दृष्टि से देश और दुनिया को सदैव आलोकित किया है। लेकिन औपनिवेशिक दासता और स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद के पिछले अनेक वर्षों में हमने भारतीय चित्त, चिति और विज्ञान के अविचल संबंध को, उससे बनी आत्मविश्वास पूर्ण संरचना को बिसरा दिया है। इसीलिए औपनिवेशिक दासता की छाया से हम बहुत हद तक आज भी मुक्त नहीं हो पाए हैं और यही बड़ा कारण है कि आज भी हम आधुनिकता के हजारों–हजार संकटों में घिरे हुए हैं। हमारे असंख्य संकटों में एक महासंकट जल संकट भी है। यह संकट केवल हमारा ही नहीं है बल्कि पूरी दुनिया इससे भयाक्रांत है। यह अधिक वर्ष पुरानी बात नहीं है जब हमें हमारी परंपरा बताती थी कि मध्यप्रदेश में सैंकड़ों नदियाँ और हजारों जल संरचनाएँ मध्यप्रदेश को समृद्धि और वैभव प्रदान कर रही थीं। मध्यप्रदेश भगवान परशुराम, महर्षि सांदिपनी, अवंती महाजनपद, सम्राट विक्रमादित्य, वराहमिहिर आज के जमाने में साधन सम्पन्नता और उच्च जीवन स्तर के मानक रूप में प्रतिष्ठित रहा है। परंतु अब यह स्वैरकल्पना का विषय भर रह गया है। वर्तमान में हमारे यहाँ कोई 212 नदियों के बारे में परंपरा में और दस्तावेजों में उल्लेख मिलते हैं। इसमें भी बहुत सी जल संरचनाएँ विलुप्ति की दिशा में अग्रसर हैं। जल परंपरा के विलोप होते जाने का अर्थ ही है कि जीवन, सभ्यता, संस्कृति भी क्षरण ओर बड़ी तेजी से अग्रसर है। निश्चित रूप से जीवन–जगत की रक्षा के लिए जल परम्परा को, जल निधि को संरक्षित–संवर्धित किए जाने की सर्वोपरि आवश्यकता है। मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने मध्यप्रदेश निर्माण के अपने महती संकल्पों में जल गगा संवर्धन को विशेष अभियान के रूप में सम्मिलित किया है। पारंपरिक देशज दृष्टि और संस्कार के अनुरूप जल तथा प्रकृति के प्रति संवेदनशील वैज्ञानिक दृष्टि से जल के औषधतत्व, उसकी सार्वभौमिकता को आत्मसात करने का मुख्यमंत्री जी का विचार वरेण्य है। और यह भी कि नदी परंपरा, संस्कृति, जीवन दृष्टि तथा सुदूर संवेदनशील तकनीक का उपयोग करते हुए नदी एवं जलीय संरचनाओं के सांस्कृतिक मान चित्रीकरण की पहल ऐतिहासिक है। शिप्रा नदी सदियों से आध्यात्मिक, धार्मिक, और सामाजिक गतिविधियों का केंद्र रही है। इसके किनारे पर होने वाले कुम्भ मेले का वैश्विक महत्व है, जो हर बार लाखों श्रद्धालुओं और पर्यटकों को आकर्षित करता है।

इस पुस्तक में शिप्रा नदी की पौराणिक कथाओं से लेकर उसके वर्तमान स्वरूप तक की यात्रा का विस्तृत वर्णन है। इसमें न केवल नदी की धार्मिक महत्ता को उजागर किया गया है, बल्कि उसके पर्यावरणीय और सामाजिक पहलुओं को भी ध्यान में रखा गया है। यह हमारे लिए गर्व का विषय है कि हमारी संस्कृति और इतिहास का ऐसा महत्वपूर्ण हिस्सा इन पुस्तकों के माध्यम से दस्तावेजीकृत किया जा रहा है। आज जब हम आधुनिकता और प्रगति की ओर अग्रसर हो रहे हैं, तब हमें अपनी जड़ों को भी नहीं भूलना चाहिए। हमारी संस्कृति और परंपराओं को समझने और सहेजने की दिशा में यह पुस्तकें एक महत्वपूर्ण कदम है। यह पुस्तक हमारे आने वाली पीढ़ियों को उनकी धरोहर के बारे में जानकारी प्रदान करेगी और उन्हें अपनी संस्कृति पर गर्व करने का अवसर देगी। शिप्रा नदी का महत्त्व केवल धार्मिक या पौराणिक नहीं है, बल्कि इसका सांस्कृतिक और सामाजिक योगदान भी अविस्मरणीय है।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujjain@gmail.com, vikramadityashodhpeeth@gmail.com